आपने लिखा

पनचक्की का उद्गम और जीत लेख बहुत अच्छा लगा। अगर चित्र भी होते तो और अच्छा लगता। पनचक्की कैसे काम करती है और इसका भारत में चलन कब शुरू हुआ यह जानने की इच्छा है। विशेषकर हरदा-होशंगाबाद के इलाके में पनचक्की का चलन कब हुआ?

मेरी मां बताती हैं कि वे बहुत समय तक घट्टी पर आटा पीसती थीं। मैंने जब होश संभाला तो एक आवाज़ करने वाली, पानी और खनिज तेल से चलने वाली चक्की देखी थी। फिर भी घट्टी का उपयोग घर में बहुत होता था, मसाले आदि घर पर ही पीसते थे। यहां घट्टी से मेरा आशय है हाथ से चलने वाली पत्थर की चक्की से है।

अरुण साकल्ले
शुक्रवारा वार्ड, हरदा

मैं संदर्भ का नया पाठक हूं। मुझे इसमें काफी कुछ मिल रहा है। किताबी ज्ञान (पाठ्य पुस्तकों) से भिन्न ढंग से प्रस्तुति सराहनीय है। वर्ना तो हम बहुत सारी चीज़ों को केवल कोर्स के तरीके और रटने के कारण जान नहीं पाते कि कैसे एक परिकल्पना से प्रयोगों द्वारा पुष्टि होने पर, वैज्ञानिक सिद्धांत का निर्माण होता है। यह काफी महत्वपूर्ण बात है। अतः आवश्यक है कि वैज्ञानिक विचार-धारा और वैज्ञानिक सोच वाले समाज के निर्माण के लिए हमें वैज्ञानिक प्रक्रिया को व्यवहार में लागू करना पड़ेगा। मैंने गांव से पढ़ाई की है, जहां असुविधाओं के कारण अध्यापक आने से डरते हैं। अब मैं गांव से आ गया हूं लेकिन वहां के हालात देखकर चाहता हूं कि उन लड़कों के लिए भी कुछ कर सकूं जो आज के बौद्धिकता के दौर में पिछड़ गए हैं। मैं अभी स्नातक कक्षा में पढ़ रहा हूं और विज्ञान का विद्यार्थी हूं। मुझे विज्ञान को सरलता से समझाने में रुचि है जिसमें संदर्भ काफी सहायक है। बहुत सारी पत्रिकाएं हम आर्थिक तंगी की वजह से नहीं पढ़ पाते लेकिन 'एकलव्य' का प्रयास सराहनीय है कि वह व्यवसायिकता के इस माहौल में भी अपने लक्ष्य पर अडिग है।

अंक 39 में प्रो. यशपाल का लेख बहुत अच्छा लगा। मैं हमेशा से बोझिल शिक्षा पद्धति का विरोधी रहा हूं। क्या हम अपनी समस्याएं प्रो. यशपाल को लिखकर भेज सकते हैं?

अंक 40 में 'बच्चे स्कूल से जी क्यों चुराते हैं?' और पनचक्की पर जानकारी अच्छी लगी। आपने प्रश्न किया था कि तिरछी गति को खड़ी गति में बदलने का तरीका क्या हो सकता है?

मैंने अपने यहां के पहाड़ी इलाकों में देखा है कि यहां जो बेलनाकार टरबाइन बनाई जाती है वह खड़ी ही बनाई जाती है और पंखों को उसकी परिधि पर कुछ कोण में झुकाकर लगाते हैं। टरबाइन के अक्ष से भारी पत्थर (चक्की) जोड़ देते

हैं। मैं भी घराट के विषय में कुछ लिखना चाहता हूं, विशेषकर जो हमारे इलाकों में पाए जाते हैं।

मेरा एक प्रश्न या यूं कहें समस्या है – भौतिक विज्ञान पढ़ते समय मूल राशियों के बारे में पढ़ते हैं जैसे: द्रव्यमान, लंबाई, समय तापमान आदि। इन राशियों की परिभाषाएं किस प्रकार दें यह समझ में नहीं आता।

आपसे एक अनुरोध है कि प्रकाश के गुणों की खोज के बारे में किए गए कुछ मूलभूत प्रयोगों की जानकारी दें। हो सके तो मूलभूत नियमों की खोज पर एक शृंखला प्रकाशित कीजिए।

कमलेश चंद्र
पिथौरागढ़, उत्तरांचल

काफी लंबे इंतज़ार के बाद संदर्भ मिली। इंतज़ार का यह सिलसिला तब से शुरू हुआ है जब से आपने कीमत बढ़ाई है। यह एक विडंबना ही है कि हम सेवाओं के बदले मूल्य तो बढ़ा देते हैं लेकिन सेवा में गुणात्मक सुधार और भी गिरता जाता है। यह बात चाहे बिजली बोर्ड हो, या रेलवे सभी पर लागू होती है।

संदर्भ के 40 वें अंक में मेरी ही तहसील के एक व्यक्ति का खत पढ़कर काफी खुशी हुई कि संदर्भ अब राजस्थान में भी लोकप्रिय हो रही है।

'बच्चे स्कूल से जी क्यों चुराते हैं' पसंद आया। यह समस्या हर स्कूल में थोड़ी बहुत पाई ही जाती है। इसमें कुछ कारण तो अध्यापक और अभिभावकों में संवेदनशीलता का अभाव भी होता है। आपने जो वर्कशॉप या केन्द्र की बात कही है, वह वास्तव में काफी अच्छा समाधान है परन्तु दूर-दराज़ के पिछड़े गांवों में काफी मुश्किलात का सामना करना पड़ता है। बच्चों के बैठने की व्यवस्था नहीं है, एक प्रशिक्षित व्यक्ति चाहिए जो संवेदनशील होने के साथ बच्चों की सृजनशीलता को शिक्षण के लक्ष्यों से भी जोड़ सके।

सवालीराम के सवाल का जवाब 'पहाड़ कैसे बने?' ज्ञानप्रद था। किन्तु मेरे मन में यह सवाल है कि पहाड़ बनने के जो कारण आपने बताए वे अब कम क्यों हो गए हैं? आधुनिक भौगोलिक इतिहास में क्यों कोई विशाल पहाड़ नहीं बना दिखता? प्लेट के बीच जो खाली जगह होती है उनमें मैग्मा तो भर जाता होगा लेकिन क्या वह इतना कठोर होता है कि ऊपर की धरती के वज़न को अंदर धंसकने से रोके रखे?

पक्षी व्यवहार में 'कौओं' के बारे में चिंतन करके माधव गाडगिल ने पर्यावरण चेतना का वातावरण तैयार करने हेतु प्रयास किया है। हमारे यहां 4-5 साल पहले काफी कौए, बड काग, मोर और गिद्ध होते थे। लेकिन पता नहीं क्यों अचानक इनकी संख्या बहुत कम हो गई

है। गिद्ध तो पूर्णतः विलुप्त हो गए हैं। पिछले तीन वर्षों में काफी ढोर मरे लेकिन उन्हें खाने एक भी गिद्ध नहीं आया।

'पनचक्की का उद्‌गम' लेख पढ़कर समझ में आया कि हर छोटी-छोटी चीज़ के पीछे भी कितना संघर्ष छुपा हुआ है। यह बात केवल भारत में नहीं बल्कि विश्व के हर देश में पाई जाती है।

'अंतरंग राक्षस' कहानी भी हमारी असंवेदनशीलता को प्रकट करती है। कई बार हम स्वयं के प्रति संवेदनशील होते हुए भी मन में बैठे कुछ पूर्वाग्रहों के कारण दूसरों के प्रति असंवेदनशील हो जाते हैं जिसके लिए बाद में हमें पछतावा भी होता है। कहानीकार को धन्यवाद और चित्रकार की कल्पना भी काफी भावप्रधान लगी। उन्हें भी बधाई।

अंक 39 में आर. एस. राजपूत के लेख पर आपने प्रतिक्रियाएं मांगी थीं बड़ी उम्मीद के साथ अंक 40 खोला लेकिन उसमें प्रतिक्रियाएं नदारद थीं। मैंने भी अपनी प्रतिक्रिया भेजी थी हो सके तो उस बहस को जारी रखिए।

रमेश जांगिड
ज़िला हनुमानगढ़, राजस्थान

40 वां अंक मिला। 'रंगों का दोलन', 'सवालीराम', 'कागज़ की कतरनें ...' इत्यादि लेख काफी ज्ञानवर्द्धक रहे। साथ में पनचक्की का उद्‌गम भी काफी रोचक रहा। एक निवेदन है कि भौतिक, रसायन और गणित के विविध सिद्धांतों के विषय में लेख नियमित रूप से प्रकाशित किए जाएं।

एक शिकायत भी है कि मुझे 40 वां अंक 14 मार्च को मिला है। कृपया संदर्भ को समय पर प्रकाशित कर वितरित कीजिए।

नीलम टोप्पो
जरहा भाटा, बिलासपुर

पिछले अंक में पनचक्की के भारतीय उदाहरण नहीं दे पाए थे। साथ वाले पेज पर दो भारतीय पनचक्कियों के रेखाचित्र दे रहे हैं।

भारत के कई इलाकों में पनचक्कियों का लंबे समय से चलन रहा है। हरदा-होशंगाबाद इलाके की पनचक्कियों पर कोई जानकारी मिलने पर ज़रूर प्रकाशित करेंगे।

— संपादन मंडल

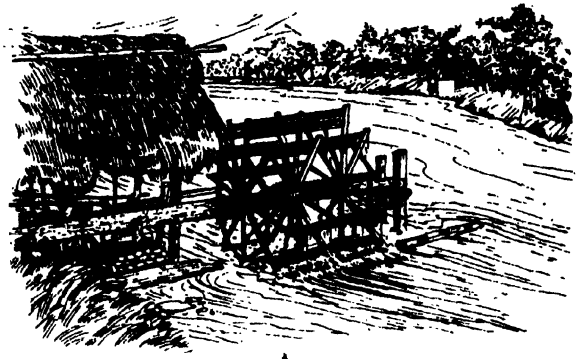

उत्तर-पूर्वी भारत में कई नदियों पर इस किस्म की पनचक्कियां देखी जा सकती हैं। इनसे अनाज की पिसाई के अलावा और भी कई काम लिए जाते हैं।

चित्राकन: नंदकिशोर हटवाल

गढ़वाल की एक घराट (पनचक्की) जिसमें पानी की मुख्य धारा में से एक छोटी धारा अलग से निकाली गई है। यह छोटी धारा पनचक्की को गतिमान रखने के लिए इस्तेमाल की जाती है।

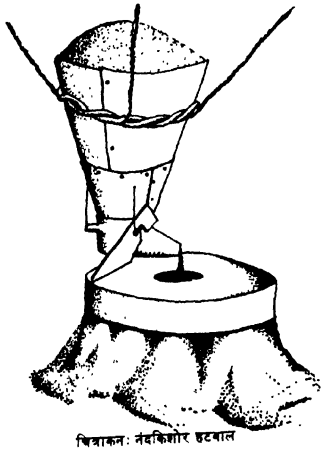

घराट का भीतरी भाग जहां अनाज की पिसाई हो रही है।

चित्राकन: नंदकिशोर हटवाल